Department of Economics

L.N.D. COLLEGE, MOTIHARI (BIHAR)

(a constitueant unit of B.R.A. University, Muzaffarpur (Bihar)

NAAC Accredited 'B+'

Topic : मजदूरी और सिद्धान्त (WAGES एएनडी THEORIES)

BA Economics Part I MJC/MIC/MDC (Semester I)

Instructor

Dr. Ram Prawesh

Guest Faculty (Department of Economics)

L.N.D. COLLEGE, MOTIHARI (BIHAR)

मजदूरी और सिद्धान्त (WAGES and THEORIES)

कोई भी कार्य चाहे शारीरिक हो या मानसिक यदि वह आंशिक रूप से अथवा पूर्ण रूप से मौद्रिक भुगतान के लिए किया जाय तो उसे श्रम कहते हैं। श्रम के लिए श्रमिक को प्राप्त होने वाला पुरस्कार मजदूरी कहलाता है। मजदूरी शब्द का अर्थशास्त्र में व्यापक अर्थ होता है। इसमें प्रति घण्टा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह दिया जाने वाला भुगतान, डॉक्टर, वकील या अध्यापक की फीस, घर के नौकर को दिया जाने वाला भुगतान आदि शामिल होता है। मजदूरी देने के दो तरीके हैं-

(1) समयानुसार मजदूरी (Time Wages) - एक निश्चित समय के लिए श्रमिकों को जो भुगतान दिया जाता है तो उसे समयानुसार मजदूरी कहा जाता है। जैसे- प्रति घण्टा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह अथवा प्रति माह आदि ।

(2) कार्यानुसार मजदूरी (Piece Wages)- जब श्रमिकों के कार्य के आकार या गुण के अनुसार मजदूरी दी जाती है तो उसे कार्यानुसार मजदूरी कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक कुर्सी बनाने के लिए बढ़ई को 15 रु. दिये जायें तो वह कार्य मजदूरी (Piece Wage) कही जायेगी चाहे बढ़ई कुर्सी एक दिन में बनाये अथवा सप्ताह में इससे मजदूरी का कोई सम्बन्ध नहीं होता।

परिभाषाएँ (Definitions)

मजदूरी वह पुरस्कार है जो उन श्रमिकों को दिया जाता है जो वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में किसी प्रकार का श्रम करते हैं। मजदूरी राष्ट्रीय लाभांश का वह भाग होता है जो श्रमिक को उसके श्रम के बदले में दिया जाता है। इस प्रकार मजदूरी शारीरिक या मानसिक श्रम के लिए भुगतान है।

(i) प्रो. मैक्कॉनल के अनुसार, "श्रम के उपयोग के लिए चुकायी गयी कीमत को मजदूरी या मजदूरी दर कहते हैं। "

(ii) प्रो. बेन्हम के अनुसार, "मजदूरी मुद्रा की उस राशि को कहा जाता है जो एक मालिक किसी श्रमिक को एक समझौते के अनुसार उसकी सेवाओं के लिए देता है। "

नकद मजदूरी एवं असल मजदूरी (NOMINAL WAGES AND REAL WAGES)

(1) नकद मजदूरी - वह मजदूरी होती है जिसे श्रमिक को एक निश्चित समयावधि के लिए मुद्रा (Money) में चुकाया जाता है। समयावधि घण्टा, दिन, सप्ताह, मास आदि कुछ भी हो सकती है। नकद मजदूरी मुद्रा की वह मात्रा है जो एक श्रमिक को समय के हिसाब से दी जाती है। उदाहरण के लिए, बैंक में काम करने वाले लिपिक को 6,000 रुपये मासिक वेतन नकद मजदूरी के रूप में मिलता है और एक मकान बनाने वाले मजदूर को 20 रु. प्रतिदिन नकद मजदूरी दी जाती है।

(2) वास्तविक मजदूरी या असल मजदूरी से अभिप्राय वस्तुओं एवं सेवाओं की उस मात्रा से है जो एक व्यक्ति अपनी नकद मजदूरी द्वारा खरीद सकता है। वास्तविक मजदूरी में केवल नकद मजदूरी से खरीदी जाने वाली वस्तुएँ और सेवाएँ ही नहीं आतीं बल्कि वे सभी सुविधाएँ एवं प्रासंगिक लाभ (Incidental Gains) भीवास्तविक मजदूरी में सम्मिलित किये जाते हैं जो श्रमिक को नकद मजदूरी के अलावा प्राप्त होते हैं। दूसरे शब्दों में, "किसी श्रमिक की वास्तविक मजदूरी में वे सभी लाभ, सुविधाएँ शामिल होती हैं जो उसे नकद मजदूरी के अलावा प्राप्त होते हैं।" श्रमिकों को नकद मजदूरी के अलावा कई दशाओं में कुछ सुविधाएँ भी मिलती हैं, जैसे-सस्ता मकान, निःशुल्क चिकित्सा, बच्चों के लिए निःशुल्क अथवा सस्ती दर पर शिक्षा व्यवस्था, मनोरंजन की सुविधाएँ आदि। ये सभी सुविधाएँ श्रमिक के रहन-सहन के स्तर को निर्धारित करती हैं। इसी कारण इन्हें वास्तविक मजदूरी में शमिल करते हैं। एक श्रमिक अपनी नकद मजदूरी के बदले में वस्तुओं और सेवाओं की जितनी मात्रा प्राप्त कर सकता है वही उसकी वास्तविक मजदूरी है।

मजदूरी के सिद्धान्त (THEORIES OF WAGES)

मजदूरी निर्धारण के लिए विभिन्न अर्थशास्त्रियों के कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. मजदूरी कोष सिद्धान्त (WAGE FUND THEORY) - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अर्थशास्त्र के जनक प्रो. एडम स्मिथ ने किया, परन्तु इसे सही रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय जे. एस. मिल (J. S. Mill) को जाता है। प्रो. मिल के अनुसार मजदूरी श्रम की पूर्ति व श्रम की माँग की सापेक्षिक दशाओं पर निर्भर करती है। मजदूरी जनसंख्या व पूँजी के अनुपात पर निर्भर करती है अर्थात् श्रमिक वर्ग की वह संख्या जो प्रचलित मजदूरी दर पर काम करने के लिए तैयार है तथा राष्ट्रीय आय का वह भाग जो प्रत्यक्ष रूप से श्रम की सेवाओं को खरीदने के लिए रखा गया है। यही पूँजी की मात्रा जो श्रम की सेवाओं को खरीदने के लिए रखी जाती है मजदूरी कोष (Wage Fund) कहलाती है। एक निश्चित समय के लिए यह मजदूरी कोष (Wage Fund) भी निश्चित होता है। मजदूरी कोष निश्चित होने के कारण मजदूरी दर श्रमिकों की संख्या पर निर्भर करती है। श्रमिकों की संख्या अर्थात् पूर्ति बढ़ने पर स्वाभाविक रूप से मजदूरी दर कम होगी और श्रमिकों की संख्या कम होने पर मजदूरी दर अधिक होगी।

प्रो. पीगू ने इसे निम्न सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया है-

$$\text{रोजगार की मात्रा (अथवा श्रमिकों की पूर्ति)} = \frac{\text{मजदूरी कोष}}{\text{मजदूरी दर}}$$

2. मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Wages)

जब वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रयोग मजदूरी निर्धारण के लिए किया जाता है तो इसे मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त कहते है। इस सिद्धान्त के अनुसार संतुलन की अवस्था में मजदूरी की दर श्रम की सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर होती है, अर्थात् प्रत्येक मजदूर को किसी भी व्यवसाय में उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही मजदूरी प्राप्त होगी, क्योंकि उत्पादक किसी भी व्यवसाय में मजदूरों को उसी बिन्दु तक कार्य पर लगाते हैं जिस बिन्दु पर इनसे प्राप्त आय इन पर किए गये व्यय के बराबर न हो जाए।

अन्य शब्दों में, एक उत्पादक श्रमिकों की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयों का तब तक प्रयोग करता जायेगा जब तक कि श्रम की एक अतिरिक्त इकाई की उत्पादकता का मूल्य उसे दी जाने वाली मजदूरी के तुल्य न हो जाये। स्पष्ट है कि मजदूरी का निर्धारण श्रम की सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होता है।

उदाहरणस्वरूप, यदि एक पेन बनाने के कारखाने में 10 श्रमिक मिलकर 2,000 रु. मूल्य के पेन का उत्पादन करते हैं। यदि श्रमिकों की संख्या में एक इकाई की वृद्धि अर्थात् 11 श्रमिक लगाने पर पेन का उत्पादन बढ़कर 2200 रुपये हो जाता है तो स्पष्ट है कि । श्रमिक के बढने से कुल उत्पादन में वृद्धि का मूल्य 200 रु. है, अतः एक मजदूर की सीमान्त उत्पादकता 200 रु. के बराबर है, इसलिए प्रत्येक मजदूर को 200 रु. की दर से मजदूरी प्राप्त होगी।

स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में श्रमिकों की मजदूरी उनकी माँग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। इस सिद्धान्त में यह भी माना जाता है कि श्रम की समस्त इकाइयाँ बराबर हैं तथा श्रम व नियोक्ता में सौदेबाजी की क्षमता होती है व उत्पादन के साधन दीर्घकाल में भी स्थिर रहते हैं। उत्पत्ति के अन्य साधनों की मात्रा में परिवर्तन सम्भव नहीं होता तथा श्रम की माँग एक व्युत्पन्न माँग होती है अर्थात् वस्तु की माँग के घटने बढ़ने से श्रम की माँग भी घटती-बढ़ती है। उत्पादन काल में उत्पत्ति हास नियम क्रियाशील होता है इसके अलावा एक उत्पादक श्रम की सीमान्त उत्पादकता को ज्ञात करने के लिए स्थानापन्न नियम को प्रयोग में लाता है।

समयानुसार मजदूरी व कार्यानुसार मजदूरी (TIME WAGES AND PRICE WAGES)

समयानुसार व कार्यानुसार मजदूरी, मजदूरी भुगतान की दो विधियाँ हैं।

(i) समयानुसार मजदूरी (Time Wages) -

जब मजदूरी राशि का भुगतान कार्य करने की अवधि के आधार पर किया जाता है इसमें कार्य विशेष पर ध्यान नहीं दिया जाता। अतः मजदूरी का भुगतान समय के आधार पर किया जाता है। समय की अवधि एक घंटा, एक दिन, एक सप्ताह, एक माह हो सकती है।

गुण (Merits)- मजदूरी भुगतान का यह तरीका वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित है। इसके निम्न गुण हैं-

(1) सरलता के कारण यह रीति अत्यधिक प्रचलित है क्योंकि इसमें केवल मजदूर के कार्य के घंटे को ध्यान में रखा जाता है।

(2) इस रीति में श्रमिकों के रोजगार में स्थायित्व आता है। कुछ दिन कार्य बन्द करने पर भी श्रमिक का रोजगार सुरक्षित

(3) श्रमिक के स्वास्थ्य की दृष्टि से यह प्रणाली श्रेष्ठ हैं। इसमें श्रमिक पर कार्य का अतिरिक्त बोझ नहीं रहता है।

(4) इस विधि से कार्य की गुणवत्ता बनी रहती है और श्रमिक कार्य को करने में जल्दबाजी नहीं करता। अतः अपनी कुशलता को प्रदर्शित करने का उसके पास पूर्ण अवसर होता है।

(5) सावधानी व संयम से कार्य करने से उत्पादन के साधनों का समुचित प्रयोग संभव होता है। अपव्यय नहीं होने के साथ मशीनों व यन्त्रों में मूल्य ह्रास नहीं होता है।

(6) कुशलता व शिल्पकारी के लिए यह रीति सर्वश्रेष्ठ है।

दोष (Demerits) उपर्युक्त गुण होने के बाद भी इस रीति में निम्न कमियाँ हैं-

(1) श्रमिकों में अधिक कार्य न करने की भावना के कारण उत्पादन में कमी आती है, क्योंकि कम कार्य व अधिक कार्य करने की दोनों स्थितियों में मजदूरी समान प्राप्त होती है।

(2) इस रीति का उत्पादन कर से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने के कारण कुशल व अकुशल श्रमिकों में अन्तर नहीं किया जाता। अतः दोनों को हो समान मजदूरी प्राप्त होती है। फलस्वरूप कार्य की गति धीमी होती है।

(3) इस विधि में श्रमिकों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु कार्य पर निगरानी या निरीक्षण अनिवार्य होता है अतः निरीक्षकों पर व्यय के कारण लागत बढ़ जाती है।

(4) इस रीति से मजदूरों में असंतोष व्याप्त होता है। कुशल श्रमिकों की योग्यता का पुरस्कार न मिलना, उन्नति के अवसर न होना, मँहगाई बढ़ने आदि कारणों सें श्रमिकों में असंतोष व्याप्त होता है।

(ii) कार्यानुसार मजदूरी (Price Wages)

जब मजदूरी का निर्धारण कार्य व उत्तमता के गुण के आधार पर होता है तो इसे कार्यानुसार मजदूरी कहते हैं। इस रोति में श्रमिक के कार्य व मजदूरी में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है परन्तु इसमें समय पर ध्यान नहीं दिया जाता। मजदूर जितना अधिक व उत्तम कार्य करता है वह उतनी ही अधिक मजदूरी पाता है। अतः इस रीति में समय प्रधान न होकर कार्य की मात्रा महत्वपूर्ण होती है।

गुण (Merits)- इस विधि के निम्न गुण हैं-

(1) कार्यानुसार व उत्तमता के आधार पर मजदूरी देने से मजदूर कार्य अधिक करते हैं। अतः उत्पादन में वृद्धि होती है।

(2) कार्यानुसार व उत्तमता के आधार पर मजदूरी देने में मजदूरों की आय में वृद्धि होती है।

(3) इस रीति में निरीक्षण की आवश्यकता नहीं होती। कार्य न करने पर मजदूर का स्वयं का नुकसान होता है, परन्तु गुण नियंत्रण पर ध्यान दिया जाता है।
(4) कार्यानुसार मजदूरी के कारण श्रमिकों में असंतोष नहीं रहता।
(5) श्रमिक अधिक मजदूरी प्राप्ति की आकांशा में कुशलता व ईमानदारी से कार्य करता है। कम समय में अधिक उत्पादन के कारण उत्पादन लागत में कमी आती है। अतः वस्तुओं की कीमत कम हो जाती है।
(6) इस रीति से श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ती है।
(7) कार्यानुसार मजदूरी के कारण श्रम शक्ति का अधिकतम प्रयोग संभव होता है।
(8) अधिकतम उत्पादन करने की लालसा के कारण यंत्रों व मशीनों पर मूल्य हास कम होता है क्योंकि इसमें टूट-फूट की संभावना से इनको कुशलता से इनका उपयोग किया जाता है।
दोष (Demerits)-उपर्युक्त गुणों के बावजूद इस रीति में निम्न दोष हैं-
(1) कार्यानुसार मजदूरी के कारण अधिकतम उत्पादन की प्रतिस्पर्धा से वस्तुओं की गुणवत्ता में कमी आती है।
(2) अधिक मजदूरी प्राप्ति की लालसा के कारण श्रमिक अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं देता। अतः उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
(3) यह विधि कलात्मक व शिल्पकारी कार्य हेतु अनुपयुक्त है।
(4) कार्यानुसार मजदूरी का प्रबंध से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। प्रबंधन की अयोग्यता व असहयोग के कारण उत्पादन प्रभावित होता है।
(5) अधिक कार्य व अधिक कमाने की प्रतिस्पर्धा उद्योगपतियों में द्वेष उत्पन्न करती है और वे मजदूरी की दर को कम करने पर विचार करते हैं अतः श्रम-उद्योगपति वर्ग संघर्ष की भावना उत्पन्न होती है। (6) यह रीति श्रम संघों हेतु हानिकारक है क्योंकि अधिक कमाने की प्रतिस्पर्धा के कारण श्रमसंघों में श्रमिक रुचि नहीं लेता हैं।